मीठाभाई पाशाभाई पटेल और अन्य

बनाम

गुजरात राज्य

आपराधिक अपील संख्या 941/2009

06 मई, 2009

[एस.बी. सिन्हा और डॉ. मुकुंदकम शर्मा, जे.जे.]

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 167, 309 - रिमाण्ड की शक्तिया - माना: न्यायालय अन्त में धारा 167(2) के तहत रिमाण्ड की शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जब अनुसंधानपूर्ण नही हुआ हो- एक बार आरोप-पत्र प्रस्तुत कर दिया जाता है और अपराध का प्रसंज्ञान ले लिया जाता है, न्यायालय अन्तर्गत धारा 167(2) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग नही कर सकता और तब धारा 309(2) लागू होता है- तथ्यों पर अपीलार्थी की जमानत स्वीकार की गई- साधारणतः वे अभिरक्षा में नही रखे जा सकते, जब तक उनकी जमानत निरस्त नही कर दी जाती- उच्च न्यायालय यह मानने में सही नही था कि अग्रिम अनुसंधान आवश्यक था, धारा 167(2) पुलिस अभिरक्षा स्वीकृत करने को लेकर प्रचुर अधिकार प्रदान करती है- भारत का संविधान 1950- आर्टिकल 142

प्रस्तुत अपील में विचारण हेतु जो प्रश्न उठा है कि क्या अनुसंधान अधिकारी के बदल दिये जाने से रिमाण्ड को लेकर अभियुक्त की पुलिस अभिरक्षा स्वीकृत की जा सकती है। यद्यपि अपराध का प्रसंज्ञान पूर्व में लिया जा चुका था।

अपील स्वीकार करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1. धारा 173 दण्ड प्रक्रिया संहिता की उपधारा (8) के तहत निर्विवादित रूप से अनुसंधान अधिकारी न्यायालय के समक्ष प्रार्थना कर सकता है और प्रकरण में अग्रिम अनुसंधान करने की अनुमति दी जा सकती है। फिर भी वहॉ कुछ परिस्थितिया है जहॉ औपचारिक प्रार्थना अतिआवश्यक नही हो सकती। यह व्यर्थ की आपत्ति से परे है कि अग्रिम अनुसंधान और पुनः अनुसंधान अलग-अलग पांव पर खडे है। यह हो सकता है कि दी हुई परिस्थितियों में एक उच्चतर न्यायालय अपने संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए यथा भारत के संविधान के आर्टिकल 226 व 32 राज्य को निर्देश दे सकता है कि एक अपराध का अनुसंधान किया जावे या किसी अलग प्राधिकारी द्वारा अनुसंधान किया जावे। फिर भी पुनः अनुसंधान के निर्देश कानून मान्य नही है। कोई भी उच्चतर न्यायालय ऐसे निर्देश साधारणतया नही देगी [पैरा 16, 17] [113-ई-एच]

रामचन्द्रा बनाम आर. उदयकुमार (2008) 5 एससीसी 413; निर्मल सिंह काहलों बनाम पंजाब राज्य (2009) 1 एससीसी 441 - पर निर्भर था।

2. जांच संस्था या एक न्यायालय प्रदत्त क्षेत्राधिकार की शक्तियों का प्रयोग संहिता के प्रावधानों की शर्तो के अधीन ही कर सकता है। उच्च न्यायालय के अधिनस्थ न्यायालयों को धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत अन्तर्निहित शक्तिया नही है। प्रसंज्ञान पूर्व रिमाण्ड का क्षेत्राधिकार अधिनस्थ न्यायालयों में निहित है इसलिए संहिता के चारों कोनो के भीतर ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। [पैरा 21] [1134-एफ-एच]

3. धारा 167 की शर्तो के अधीन रिमाण्ड की शक्तियों का प्रयोग तब किया जा सकता है जब अनुसंधान पूर्ण नही हुआ हो। एक बार अनुसंधान पूर्ण कर लिया जाता है और अपराध का प्रसंज्ञान ले लिया गया है, न्यायालय संहिता की धारा 167, उपधारा (2) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग नही कर सकता। रिमाण्ड की इन शक्तियों का प्रयोग धारा 309 की उपधरा (2) के तहत किया जा सकता है। [पैरा 22] [1136-डी-जी]

4. अपीलार्थीगण की जमानत स्वीकार की गयी। वे न्यायालय की अभिरक्षा में नही थे। वे साधारणतः अभिरक्षा में नही लिये जा सकते जब तक उनकी जमानत खारिज नही कर दी जाती। उच्च न्यायालय यह मानने में सही नही था कि संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) अग्रिम अनुसंधान को लेकर पुलिस रिमाण्ड स्वीकार करने बाबत् प्रचुर अधिकार

देती हो। धारा 167 की उपधारा (2) व संहिता की धारा 309 की उपधारा (2) में रिमाण्ड की शक्तियों को लेकर भिन्नता है। [पैरा 23, 24] [1137-ई-जी]

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य (1986) एससीसी 481; सीबीआई बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी (1992) 3 एससीसी 141; राज्य बनाम दाउद इब्राहिम कासकर

एआईआर (1997) एससी 2494; दिनेश डालमिया बनाम सीबीआई, (2007) 8 एससीसी 770; रमा चौधरी बनाम बिहार राज्य (2009) 5 एससीसी 366 - पर निर्भर था।

5. विशेष जांच दल ने पूर्व में ही इस न्यायालय में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। कुछ भी जाहिर नही किया गया कि अपीलार्थीगण को पूर्व में जमानत स्वीकार की गई थी, वह क्यों निरस्त की जावे ताकि इस प्रश्न पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जा सके। कोई पर्याप्त व ठोस दस्तावेज इस संदर्भ में विशेष अनुसंधान दल या राज्य की ओर से अभिलेख के रूप में प्रस्तुत नही किये गये है। [पैरा 26, 27] [1141-सी-एफ]

6. विशेष जांच एजेन्सी द्वारा सेशन जज के समक्ष जब तक एक अतिरिक्त आरोप-पत्र अगर प्रस्तुत नही कर दिया जाता तब तक सेशन जज द्वारा कोई अन्य या अग्रिम आदेश जो पास किया जा सकता है को लेकर भारतीय संविधान के आर्टिकल 142 की अधिकारिता का प्रयोग करते हुए

किसी प्रकरण के विशिष्ट तथ्य व परिस्थिति को लेकर अन्तरिम आदेश के अधीन जो हो सकता है, दिया जा सकता है। [पैरा 29] [1141-एफ-जी]

केस कानून संदर्भ

(2008) 5 एससीसी 413	भरोसा किया	पैरा 17
(2009) 1 एससीसी 441	भरोसा किया	पैरा 20
(1986) 4 एससीसी 481	भरोसा किया	पैरा 20
(1992) 3 एससीसी 141	भरोसा किया	पैरा 20
एआईआर (1997) एससी 2494	भरोसा किया	पैरा 20
(2007) 8 एससीसी 770	भरोसा किया	पैरा 20
(2009) 5 एससीसी 366	भरोसा किया	पैरा 20

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 941/2009

गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन संख्या 482/ 2008 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.09.2023 से।

निखिल गोयल, सईद एम. बकील, शीला गोयल, अपीलकर्ता की ओर से।

के. प्रतिवादी के लिए एनाटोली सेमा, हेमन्तिका वाही।

न्यायालय का निर्णय एस. बी. सिन्हा, जे.द्वारा सुनाया गया।

अवकाश स्वीकार किया गया।

1. क्या अनुसंधान प्राधिकारी के बदल जाने पर रिमाण्ड पर अभियुक्त की पुलिस अभिरक्षा चाही जा सकती है जबकि अपराध का प्रसंज्ञान पूर्व से ले लिया गया है का प्रश्न निहित हो।

2. सेशन केस नम्बर 70/2002 द्वितीय अतिरिक्त सेशन जज, हिम्मतनगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.05.2008 जिसे गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण प्रार्थना-पत्र नम्बर 482/2008 दिनांक 05.09.2009 के निर्णय व आदेश द्वारा अपास्त किया गया से उत्पन्न हुआ।

3. प्रकरण के सभी अनावश्यक विस्तृत हटाये हुए तथ्य इस प्रकार है-

अपीलार्थीगण को अपराध धारा 302/307/395/396/397/201/435/324/143/147/148/149/153 ए /341/337/427/ और 120 बी भारतीय दण्ड संहिता तथा अन्तर्गत धारा 135 बॉम्बे पुलिस अधिनियम के तहत अभियोजित किये जा चुके है।

4. घटना जिसमें अपीलार्थीगण शामिल है को लेकर कहा गया है कि घटना 20 अगस्त, 2002 को वडवासा पाटिया गांव प्रन्जित के पास की है। प्रथम सूचना रिपोर्ट उसी दिन दर्ज करवा दी गयी। अनुसंधान के दौरान सभी छः अपीलार्थीगण गिरफ्तार हो चुके थे।

5. निर्विवाद रूप से वे सभी धारा 167 उपधारा (2) दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 जिसे बाद में कोड से संदर्भित किया जायेगा के तहत पुलिस अभिरक्षा दी गई। अनुसंधान पूर्ण होने के पश्चात् आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। प्रकरण सेशन न्यायालय को कमिट किया गया। सेशन जज द्वारा अपराध का प्रसंज्ञान लिया गया। उन सभी को उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 30.08.2003 के जमानत का लाभ दिया गया।

6. हालांकि प्रकरण इस न्यायालय के समक्ष आया। इस न्यायालय की एक बैंच द्वारा आदेश दिनांक 26.03.2008 को रिट पीटिशन आपराधीक नम्बर 109/2003 में दिये गये आदेश से एक विशेष अनुसंधान टीम गठित की गई। इस आदेश के अनुसरण में आगे बढाते हुए राज्य सरकार गुजरात द्वारा गोधरा की घटना को लेकर तथा उसके पश्चात् वर्ष 2002 में साम्प्रदायिक दंगों के विस्फोट को लेकर दिनांक 01.04.2008 को एक विशेष अनुसंधान दल का गठन करने का नोटिफिकेशन जारी किया गया। इस नोटिफिकेशन के संदर्भ में एस.आई.टी. अग्रिम अनुसंधान को शामिल करते हुए जांच/अनुसंधान के उद्देश्य से तौर-तरीके व मापदण्ड की आवश्यकता को लेकर काम कर सकती है।

7. एक प्रार्थना-पत्र 22.05.2008 को हिमांशु शुक्ला, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के द्वारा अभियुक्त का 14 दिन के रिमाण्ड चाहने का प्रस्तुत किया गया। कारण जो जाहिर किये गये थे कि कुछ प्रावधानों के तहत कुछ

अपराध जोडे गये और उन अपराधों के संबंध में अभियुक्तगण से अनुसंधान नही किया गया है इसलिए इस संदर्भ में कुछ बिन्दू अंकित किये गये।

8. 23.05.2008 के निर्णय व आदेश के कारण उक्त प्रार्थना-पत्र विद्वान सेशन जज द्वारा खारिज किया गया। इस प्रकार संबंधित भाग इस प्रकार है-

> ‘‘.....फिर भी इस प्रक्रम पर यह न्यायालय अभियुक्तगण की भौतिक अभिरक्षा में रहते हुए विशेष अनुसंधान दल द्वारा पूछताछ को न्यस्त नही कर सकती क्योंकि वर्तमान अपराध में सम्माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा जरिए अपराधिक विविध प्रार्थना-पत्र नम्बर 4115/2002 दिनांक 30.08.2002 के नियमित जमानत स्वीकार कर चुकी है और उक्त जमानत आदेश में कुछ शर्ते अधीरोपित की है इसलिए माननीय उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकृत नियमित जमानत को निरस्त किये बिना यह न्यायालय पुलिस अभिरक्षा स्वीकृत नही कर सकती क्योंकि उक्त अभियुक्त जमानत पर है इसलिए प्रथमतः विशिष्ट अनुसंधान दल को अग्रिम अनुसंधान हेतु पुलिस अभिरक्षा को लेकर माननीय उच्च न्यायालय ने जमानत आदेश निरस्त करने का सहारा लेने की आवश्यकता है जैसा कि हमारी भूमि के सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिये है।

14. इसलिए विशिष्ट अनुसंधान दल के सदस्य को निर्देश दिये जाते है कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा नियमित जमानत आदेश दिया गया है को लेकर अपास्त/निरस्त करने बाबत् उच्च न्यायालय को आवेदन करे।

15. यह ध्यान देने योग्य है कि पुलिस अभिरक्षा कमिटल न्यायालय द्वारा दी जा सकती है इसलिए जमानत निरस्त आदेश प्राप्त करने के पश्चात् विशिष्ट अनुसंधान दल के प्रार्थी सदस्य को यह भी निर्देश दिये जाते है कि प्रथमतः विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी प्रान्तिज इस प्रकरण में पुलिस अभिरक्षा के लिए कमिटल न्यायालय में निवेदन करे क्योंकि यह न्यायालय सेशन न्यायालय है, रिमाण्ड आदेश देने में सक्षम नही है जब तक मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसी प्रार्थना निरस्त नही कर दी जाती।

9. प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष इसके विरूद्ध पुनरीक्षण आवेदन पेश करने को प्राथमिकता दी। विवादित निर्णय के कारण उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायाधीश के निर्णय को पलट दिया तथा निर्देश दिया कि अपीलार्थीगण को अभिरक्षा में भेज दिया जाये।

10. श्री निखिल गोयल विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होते हुए तर्क दिया कि संहिता की धारा 167(2) के साथ 309(2) में निहित प्रावधानों के तहत विवादित निर्णय कायम नही रखा जा सकता।

11. सुश्री के. इन्नाटोली सेमा विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी राज्य की ओर से उपस्थित होते हुए तर्क दिया कि इस प्रकरण के विशेष तथ्य तथा

परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप नही किया जा सकता।

12. विचारण के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों में अपीलार्थीगण की हिरासत रिमाण्ड का निर्देश देने में उच्च न्यायालय सही था।

13. उच्च न्यायालय ने अपने आदेश के समर्थन में राय दी -

ए. विशेष जांच दल के गठन को ध्यान में रखते हुए अग्रिम अनुसंधान किया जाना आवश्यक है तथा संहिता की धारा 167(2) आगे के अनुसंधान के लिए प्रचुर शक्तिया प्रदान करता है।

बी. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में आगे की जांच की जानी आवश्यक है क्योंकि पहले की जांच बहुत ही लापरवाहीपूर्वक की गई थी।

सी. चूंकि नई धाराएं जोडी गई है इसलिए मामले में आगे की जांच की आवश्यकता है और जांच एजेन्सी को इस तरह के अधिकार और अपीलार्थीगण की हिरासत से वंचित नही किया जा सकता। इस उद्देश्य के लिए यह तथ्य कि अपीलार्थीगण को जमानत दे दी गई कोई प्रासांगिकता नही होगी।

डी. धारा 167(2) ना कि संहिता की धारा 302(2) से जुडा प्रावधान इस मामले में लागू होगा।

ई. चूंकि विशेष जांच दल के पास पुनः जांच करने की शक्ति है इसलिए जमानत निरस्त करने की मांग करने की आवश्यकता नही है।

एफ. कमिटल आदेश पारित होने के बाद सत्र न्यायाधीश को संहिता की धारा 397 के तहत अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहिए।

14. 22, सितम्बर 2008 के आदेश से इस न्यायालय में निम्न निर्देश दिये-

''ओ.टी. दाखिल करने से छुट के लिए आवेदन की अनुमति है।

नोटिस जारी किये गये।

अगले आदेश तक विशेष जांच दल द्वारा आगे की जांच जारी रह सकती है हालांकि याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा नियुक्त विशेष जांच दल द्वारा उसके द्वारा निर्धारित दिनांक पर याचिकाकर्ता को हिरासत में लिये बिना बुलाया जा सकता है और उनसे पूछताछ केवल दिन के समय की जायेगी। विशेष जांच दल के एक या अधिक सदस्य केवल याचिकाकर्ताओं से पूछताछ कर सकेंगे अन्य कोई नही।''

15. बार में यह कहा गया है कि उक्त आदेश के अनुसार अपीलकर्ता संबंधित सत्र न्यायाधीश और विशेष जांच दल के समक्ष उपस्थित हुए थे। उन्होने 13 सितंबर, 2008 को पुलिस स्टेशन, प्रांतिज का दौरा किया था और विशेष जांच दल द्वारा आगे की जांच में सहयोग करने की ईच्छा व्यक्त करते हुए एक लिखित अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था, लेकिन उनसे पूछताछ नहीं की गई। हालांकि, उनकी उपस्थिति 14 सितंबर, 2008 को आवश्यक थी, जिसके लिए 12 सितंबर, 2008 को एक पत्र 13 सितंबर, 2008 को फैक्स द्वारा भेजा गया था। अपीलकर्ता 14 सितंबर, 2008 को सत्र न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित हुए और ममाले को 22 सितंबर तक के लिए स्थगित कर दिया गया। सितंबर, 2008. उन्होंने 14 और 15 सितंबर, 2008 को भी पुलिस स्टेशन का दौरा किया।

16. इस न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आदेश पारित करते हुए पुनः जांच का निर्देश नही दिया। इस न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जो संहिता के दायरे में था। निर्विवाद रूप से जांच एजेन्सी संहिता की धारा 173 की उप-धारा (8) के संदर्भ में अदालत के समक्ष प्रार्थना कर सकती है और उसे मामले की आगे की जांच करने की अनुमति दी जा सकती है। हालाँकि, कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जहाँ ऐसे औपचारिक अनुरोध पर जोर नहीं दिया जा सकता है।

17. हालाँकि, यह किसी भी संदेह से परे है कि' '

'पुनः जांच' अलग-अलग स्तर पर हैं। ऐसा हो सकता है कि किसी दी गई स्थिति में एक वरिष्ठ न्यायालय अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए, अर्थात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 32 के तहत, एक 'राज्य को किसी अपराध की जांच और/या एक अलग एजेंसी द्वारा आगे की जांच कराने का निर्देश दे सकता है। हालाँकि, पुनः जांच का निर्देश कानून में निषिद्ध होने के कारण, कोई भी वरिष्ठ आमतौर पर ऐसा निर्देश जारी नहीं कर सकता है।

पसायत, जे. रामचन्द्रन बनाम आर. उदयकुमार, 1 [(2008) 5 एससीसी 413] में, इस प्रकार राय दी गई:-

> "7. इस समय संहिता की धारा 173 पर ध्यान देना आवश्यक होगा। उपरोक्त धारा को स्पष्ट रूप से पढने से यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के तहत जांच पूरी होने के बाद भी, पुलिस को उपधारा (8) के तहत आगे की जांच करने का अधिकार है, लेकिन नए सिरे से जांच करने का या दोबारा जांच का नहीं..."

18. इसलिए, पुनः जांच और आगे की जांच के बीच एक अंतर मौजूद है।

19. यदि जांच प्राधिकारी, संहिता के प्रावधानों के अनुसार, दोबारा जांच के लिए नहीं कह सकता है, तो हमें इस आधार पर आगे बढ़ना होगा

कि इस न्ययालय ने 26 मार्च, 2008 के अपने आदेश में केवल आगे की जांच का निर्देश दिया था।

20. हम देख सकते हैं कि मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा निर्मल सिंह काहलों बनाम पंजाब राज्य, [(2009) 1 एससीसी 441] में भी विचार किया गया है, जिसमें यह राय दी गई हैः-

> ‘‘63. इस मामले में हाई कोर्ट किसी भी जांच की निगरानी नहीं कर रहा था, उसकी ईच्छा थी कि जांच किसी स्वतंत्र एजेंसी से करायी जाये, इसकी चिंता, जैसा कि दिनांक 03.04.2002 के आदेश से स्पष्ट है, यह देखना था कि राज्य के अधिकारी बच न जाएं। यदि ऐसा है, तो श्री राव का कहना है कि जांच की निगरानी समाप्त हो जाती है और आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद, जैसा कि इस न्यायालय ने विनीत नारायण और एमसी मेहता (ताज कॉरिडोर घोटाला) बनाम में माना है। भारत संघ, सारा महत्व खो देता है।’’

21. जांच एजेंसी और/या अदालत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग केवल संहिता के प्रावधानों के अनुसार ही करती है। उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 या अन्यथा के तहत कोई अंतर्निहित शक्ति भी नहीं है। इसलिए, अधीनस्थ न्यायालयों में निहित रिमांड के पूर्व-आपराधिक संज्ञान क्षेत्राधिकार का प्रयोग संहिता के चार कोनों के भीतर किया जाना चाहिए। रिमांड की शक्ति, निर्विवाद रूप से,

संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) के संदर्भ में एक मजिस्ट्रेट में निहित है, जो इस प्रकार हैः-

"167 प्रक्रिया जब जांच चौबीस घंटे में पूरी नहीं हो पाती।

`(1) .....

(2) जिस मजिस्ट्रेट के पास सभी अरोपी व्यक्तियों को इस धारा के तहत भेजा जाता है, वह समय-समय पर, चाहे उसके पास मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र हो या नहीं, आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है जैसा कि मजिस्ट्रेट उचित समझे, एक अवधि कुल मिलाकर पन्द्रह दिन से अधिक नहीं; और यदि उसके पास मामले की सुनवाई करने या उसे सुनवाई के लिए सौंपने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, और आगे की हिरासत को अनावश्यक मानता है, तो वह आरोपी को ऐसे अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता हैः

उसे उपलब्ध कराया-

(ए) यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि ऐसा करने के लिए प्र्याप्त आधार मौजूद हैं, तो मजिस्ट्रेट आरोपी व्यक्ति को पुलिस की हिरासत के अलावा पंद्रह दिनों की अवधि से परे हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है, लेकिन कोई भी

मजिस्ट्रेट हिरासत में रखने के लिए अधिकृत नहीं करेगा। इस पैराग्राफ के तहत आरोपी व्यक्ति कुल अवधि से अधिक के लिए हिरासत में है-

(i) नब्बे दिन, जहां जांच मौत, आजीवन कारावास या कम से कम दस साल की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है;

(ii) साठ दिन, जहां जांच किसी अन्य अपराध से संबंधित है, और, जैसा भी मामला हो, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, आरोपी व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा यदि वह तैयार है और जमानत देता है, और इस उपधारा के तहत जमानत पर रिहा किए गए प्रत्येक व्यक्ति को उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत रिहा किया गया माना जाएगा;

(बी) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत किसी भी हिरासत में रखने की अनुमति नही देगा जबतक कि आरोपी को उसके सामने पेश नही किया जाता है।

(सी) द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त नही है, पुलिस की हिरासत को अधिकृत नही करेगा।

स्पष्टीकरण 1. संदेह से बचने के लिए, यह घोषित किया जाता है कि, पैराग्राफ (ए) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के बावजूद, आरोपी को तब तक हिरासत में रखा जायेगा जब तक वह जमानत नही देता है।

स्पष्टीकरण द्वितीय, यदि कोई सवाल उठता है कि क्या किसी आरोपी व्यक्ति को पैराग्राफ (बी) के तहत आवश्यक मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था, तो आरोपी व्यक्ति की पेशी को हिरासत में लेने के आदेश पर उसके हस्ताक्षर से साबित किया जा सकता है।''

22. उपर्युक्त प्रावधान के संदर्भ में रिमाण्ड की शक्ति का प्रयोग तब तक किया जाना चाहिए जब जांच पूरी नही हो। एक बार आरोप-पत्र दाखिल हो जाने और अपराध का संज्ञान लेने के बाद, अदालत संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग नही कर सकती है। इसके बाद रिमाण्ड की शक्ति का प्रयोग धारा 309 की उपधारा (2) के संदर्भ में किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैः-

''309 कार्यवाही को स्थगित करने की शक्ति

(1) .....

(2) यदि अदालत किसी अपराध का संज्ञान लेने, या मुकदमा शुरू होने के बाद, किसी जांच या मुकदमें को शुरू करने या स्थगित करने को आवश्यक या उचित समझती है,

तो वह समय-समय पर, कारणों को दर्ज कर सकती है। उसे ऐसी शर्तो पर स्थगित या स्थगित कर सकता है, जो वह उचित समझे, ऐसे समय के लिए जब वह उचित समझे और यदि वह हिरासत में है तो वारण्ट द्वारा आरोपी को रिमाण्ड पर ले सकता हैः

बशर्ते कि कोई भी मजिस्ट्रेट किसी भी आरोपी व्यक्ति को इस धारा के तहत एक समय में 15 दिनों से अधिक की अवधि के लिए हिरासत में नही भेजेगाः

बशर्ते कि जब गवाह उपस्थित हो तो लिखित रूप में दर्ज किये जाने वाले विशेष कारणों को छोडकर, उनकी जांच किये बिना कोई स्थगन या स्थगन नही दिया जायेगाः

बशर्ते यह भी कि कोई भी स्थगन केवल आरोपी व्यक्ति को उस पर लगाये जाने वाले प्रस्तावित दण्ड के खिलाफ कारण बताने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से नही दिया जायेगा।

स्पष्टीकरण 1. यदि यह संदेह पैदा करने के लिए पर्याप्त सबूत प्राप्त किये गये है कि अभियुक्त ने कोई अपराध किया है, और यह संभावना प्रतीत होती है कि रिमाण्ड द्वारा और सबूत प्राप्त किये जा सकते है, तो यह रिमाण्ड के लिए एक उचित कारण है।

स्पष्टीकरण 2. जिन शर्तो पर स्थगन या स्थगन दिया जा सकता है, उनमें उचित मामलों मे, अभियोजन पक्ष या अभियुक्त द्वारा लागत का भुगतान शामिल है।''

23. अपीकर्ताओं को जमानत दे दी गई थी। वे अदालत की हिरासत में नही हैं जब तक उनकी जमानत रद्द नही की जाती। उन्हें सामान्य तौर पर हिरासत में नही लिया जा सकता। उच्च न्यायालय, हमारी राय में यह मानने में सही नहीं था कि आगे की जांच की आवयकता है, संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) पुलिस रिमांड देने के लिए पर्याप्त शक्ति देती है।

24. संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) औरा धारा 309 की उपधारा (2) के संदर्भ में रिमाण्ड की शक्ति के बीच अन्तर स्पष्ट है।

25. हम इस संबंध में कुछ उदाहरण देख सकते हेः-

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य [(1986) 4 एससीसी 481] में इस न्यायालय ने कहाः-

''22. हमारी चर्चा और केस-कानून का परिणाम यह हैः धारा 167 (2) के प्रावधानों के तहत जमानत पर रिहाई का आदेश समय बीतने, आरोप-पत्र दाखिल करने या हिरासत में भेजने से विफल नहीं होता है। धारा 309(2) हालांकि जमानत पर रिहाई का आदेश धारा 437(5) या धारा 439(2) के तहत रद्द किया जा सकता है। आम तौर पर जमानत रद्द करने का आधार, मौटे तौर पर न्यायिक

प्रशासन के उचित पाठ्यक्रम में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने का प्रयास, या न्याय के पाठ्यक्रम से बचने का प्रयास या चोरी, या उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरूपयोग है। गवाहों को डराने या अपमानीत करने, जांच में हस्तक्षेप करने, सबूत बनाने या गायब करने आदि के द्वारा न्याय के उचित प्रशासन में हस्तक्षेप किया जा सकता है। देश छोडकर या भूमिगत होकर या अन्यथा न्याय की प्रक्रिया से बचा जा सकता है या बचने का प्रयास किया जा सकता है। खुद को जमानतदारों की पहुंच से परे रखना। वह इसी तरह के या अन्य गैरकानूनी कृत्यों में लिप्त होकर उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरूपयोग कर सकता है। जहां 60 दिनों में जांच पूरी न करने में अभियोजन पक्ष की चूक के लिए धारा 167(2) के प्रावधानों के तहत जमानत दी गई है, आरोप-पत्र दाखिल करने से दोष ठीक होने के बाद, अभियोजन पक्ष मांग कर सकता है। जमानत इस आधार पर रद्द कर दी गई कि यह मानने के उचित आधार है कि आरोपी ने गैर-जमानती अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करना और हिरासत में भेजना आवश्यक है। अन्तिम उल्लिखित मामलें में, वास्तव मे बहुत मजबूत आधार की उम्मीद की जा सकती है।"

एक बार फिर सी.बी.आई. बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी [(1992) 3 एससीसी 141] में के. जयचंद्र रेड्डी, जे. ने बैंच के लिए बोलते हुए निम्नानुसार कहाः-

हालांकि हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि इस तरह की दोबारा गिरफ्तारी या दूसरी गिरफ्तारी और पहले पन्द्रह दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद पुलिस हिरासत की मांग विशिष्ट मामलें के अलावा किसी अन्य मामले की जांच के संबंध में होनी चाहिए। जिसके संबंध में आरोपी पहले से ही हिरासत में है। धारा 167(2) का शाब्दिक अर्थ यह है कि किसी विशिष्ट मामले की जांच के दौरान पहले से ही न्यायिक हिरासत मे मौजूद व्यक्ति की पुलिस हिरासत के लिए किसी भी परिस्थिति में नया रिमाण्ड जारी नही किया जा सकता है, इससे दूसरे मामले की जांच में गंभीर बाधा आयेगी। जिसके महत्व पर विशेष बल देने की आवश्यकता नही है। प्रक्रियात्मक कानून न्याय के उद्देश्यों को आगे बढाने के लिए है ना कि उसे विफल करने के लिए। यह एक स्वीकृत नियम है कि न्याय के लक्ष्य को आगे बढाने वाली व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह सच है कि पुलिस हिरासत पूरी जांच का सबकुछ नही है, लेकिन फिर भी यह विशेष रूप से गंभीर और जघन्य अपराधों की जांच में इसकी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। विधायका ने भी इस पर ध्यान दिया और सीमित पुलिस हिरासत की अनुमति दी। पहले 15 दिनों की अवधि स्वभाविक रूप से उस विशिष्ट मामले की जांच के संबंध में लागू होनी

चाहिए जिसके लिए आरोपी को हिरासत में रखा गया हैं। लेकिन इस तरह की हिरासत को एक ही आरोपी से जुडे पूरी तरह से अलग मामले के संबंध में पुलिस हिरासत जैसी नई हिरासत के लिए रोक नही माना जा सकता है। [जोर दिया गया]

हम यह भी देख सकते है कि राज्य बनाम दाऊद इब्राहिम कास्कर [एआईआर 1997 एससी 2494] में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार निर्णय दियाः-

जांच के दौरान गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के साथ जांच एजेन्सी और उसके सामने पेश होने पर मजिस्ट्रेट द्वारा किस तरह से व्यवहार किया जाना चाहिए, यह संहिता की धारा 167 में प्रदान किया गया है। उक्त धारा इस बात पर विचार करती है कि जब जांच धारा 57 द्वारा निर्धारित 24 घण्टों के भीतर पूरी नही की जा सकती है और यह मानने का आधार है कि गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के खिलाफ लगाया गया आरोप अच्छी तरह से स्थापित है तो जांच अधिकारी के लिए आरोपी को पहले पेश करना अनिवार्य है। निकटतम मजिस्ट्रेट ऐसी पेशी पर आरोपी को शुरू में 15 दिनों से अधिक की अवधि के लिए पुलिस हिरासत या न्यायिक हिरासत में रखने का अधिकार दे सकता है। 15 दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति पर मजिस्ट्रेट पुलिस हिरासत के अलावा उसकी आगे की हिरासत को भी अधिकृत कर सकता है यदि वह संतुष्ट है कि ऐसी हिरासत के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है।

दिनेश डालमिया बनाम सी.बी.आई. [(2007) 8 एससीसी 770] में इस न्यायालय ने राय दीः-

> "38. कानून की व्याख्या का यह सुस्थापित सिद्धान्त है कि इसे संपूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए। किसी कानून का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसके सभी प्रावधान प्रभावी हो सके। किसी आरोपी के रिमाण्ड पर संसद दो चरणों में विचार कर सकती है; पूर्व-संज्ञान और उत्तर-संज्ञान। यहां तक कि एक ही मामले में, संहिता की धारा 173 के संदर्भ में जांच अधिकारी द्वारा दायर आरोप-पत्र की प्रकृति के आधार पर, उस व्यक्ति के खिलाफ संज्ञान लिया जा सकता है, जिसके खिलाफ अपराध किया गया है और उसके खिलाफ भी संज्ञान लिया जा सकता है, जिस पर जांच लंबित होने पर भी ऐसा कोई अपराध नही बनाया गया है। जब तक संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के तहत आरोप-पत्र दाखिल नही किया जाता है, तब तक जांच लंबित रहती है। हालांकि, यह एक जांच अधिकारी को, जैसा कि यहां पहले देखा गया है, संहिता की धारा 173 की उपधारा (8) के संदर्भ में, पुलिस रिपोर्ट दर्ज होने के बावजूद आगे की जांच करने से नही रोकता है।

रमा चौधरी बनाम बिहार राज्य [2009 (5) एससीसी 366] में, यह आयोजित किया गया थाः

> ''9. उपर्युक्त प्रावधान यह भी स्पष्ट करता है कि आगे की जांच की अनुमति है, तथापित पुनः जांच निषिद्ध है। कानून आगे की जांच के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति लेने का आदेश नही देता है। आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद भी आगे की जांच करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है। बिना पूर्व अनुमति के पुनः जांच निषिद्ध है। दूसरी ओर, आगे की जांच की अनुमति है।
>
> 10. धारा 173 की उपधारा (2) और उपधारा (8) को स्पष्ट रूप से पढने से यह स्पष्ट है कि जांच पूरी होने पर उपधारा (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी, पुलिस के पास धारा 173 की उपधारा (8) के तहत'' ''
>
> अधिकार है, लेकिन ''नई जांच'' या ''पुनः जांच'' का नहीं। ''आगे'' का अर्थ अतिरिक्त है; अधिक; या पूरक इसलिए ''आगे की'' जांच पिछली जांच की निरन्तरता है, न कि कोई नई जांच या दोबारा शुरू की जाने वाली जांच जो पहले की जांच को पूरी तरह से मिटा दे। धारा 173 की उपधारा (8) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि आगे की जांच पूरी होने पर, जांच एजेन्सी को मजिस्ट्रेट को एक ''आगे' रिपोर्ट भेजनी

होगी, न कि ऐसी जांच के दौरान प्राप्त ''आगे' साक्ष्य के संबंध में ताजा रिपोर्ट।''

26. इसके अलावा इस मामले में विशेष जांच दल पहले ही अपनी रिपोर्ट इस न्यायालय को सौंप चुका है। हमारे सामने इस बारे में कुछ भी नही बताया गया है कि अपीलकर्ताओं को दी गई जमानत भी क्यों रद्द की जानी चाहिए ताकि हम उस प्रश्न पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सके।

27. इस संबंध में राज्य या विशेष जांच दल द्वारा कोई पर्याप्त या ठोस सामग्री रिकॉर्ड पर नही रखी गई है।

28. उपरोक्त कारणों से आपेक्षित निर्णय को बरकरार नही रखा जा सकता है, जिसे तदनुसार रद्द कर दिया गया है। अपील स्वीकार की जाती है।

29. हालांकि, हम इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, अन्तरिम निर्देश को सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी अन्य या आगे के आदेशों के अधीन पूर्ण बनाते है। जब तक कोई अतिरिक्त आरोप-पत्र, यदि कोई हो, विशेष जांच एजेन्सी द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष दायर नही किया जाता है।

डी.जी. अपील स्वीकार की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री धर्मेन्द्र शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण:- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।